NEERAJ®

हिंदी साहित्य का इतिहास

B.H.D.C.-131

Chapter Wise Reference Book
Including Many Solved Sample Papers

Based on

C.B.C.S. (Choice Based Credit System) Syllabus of

I.G.N.O.U.

& Various Central, State & Other Open Universities

By: *Sanjay Jain* **M.A. (Hindi), B.Ed.**

NEERAJ PUBLICATIONS
(Publishers of Educational Books)

Mob.: 8510009872, 8510009878 E-mail: info@neerajbooks.com
Website: www.neerajbooks.com

MRP ₹ 280/-

Content

हिंदी साहित्य का इतिहास

Question Paper—June-2024 (Solved) 1
Question Paper—December-2023 (Solved) 1-2
Question Paper—June-2023 (Solved) 1
Question Paper—December-2022 (Solved) 1-2
Question Paper–Exam Held in February-2021 (Solved) 1-2

S.No.	Chapterwise Reference Book	Page

1. काल-विभाजन और नामकरण 1

2. आदिकालीन काव्यधाराएँ 14

3. भक्ति आंदोलन : परिस्थितियां और सामान्य विशेषताएँ 24

4. संत काव्यधारा 38

5. सूफी काव्यधारा 50

6. कृष्णभक्ति काव्यधारा 61

7. रामभक्ति काव्यधारा 72

8. रीतिकाव्य : परिस्थितियां और प्रवृत्तियां 82

9. रीतिकाव्य के प्रमुख कवि 92

10. भारतेंदु युग 101

11. द्विवेदी युग 110

12. हिंदी कहानी का विकास-I 117

13. हिंदी कहानी का विकास-II 123

14. हिंदी उपन्यास का विकास-I 132

15. हिंदी उपन्यास का विकास-II 140

16. हिंदी नाटक का विकास 151

17. हिंदी निबंध का विकास 160

■■

Sample Preview of the Solved Sample Question Papers

Published by:

NEERAJ PUBLICATIONS

www.neerajbooks.com

QUESTION PAPER

June – 2024

(Solved)

हिंदी साहित्य का इतिहास

B.H.D.C.-131

समय : 3 घण्टे] *[अधिकतम अंक : 100*

नोट : *किन्हीं पांच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सभी प्रश्नों के अंक* ***समान*** *हैं।*

प्रश्न 1. हिंदी सूफी प्रेमकाव्य की परंपरा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-5, पृष्ठ-51, 'सूफी प्रेमकाव्य परंपरा'

प्रश्न 2. भक्ति आंदोलन के उदय के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों द्वारा व्यक्त मतों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-3, पृष्ठ-28, प्रश्न 2

प्रश्न 3. कृष्णभक्ति काव्य में भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-6, पृष्ठ-66, प्रश्न 7

प्रश्न 4. रामभक्ति काव्य में अभिव्यक्त समन्वय साधना को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-7, पृष्ठ-76, प्रश्न 5

प्रश्न 5. रीतिकाव्य का वर्गीकरण करते हुए प्रत्येक वर्ग के कवियों के नामों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-8, पृष्ठ-82, 'रीतिकाव्य का वर्गीकरण', अध्याय-9, पृष्ठ-92, 'रीतिकाव्य के प्रमुख कवि'

प्रश्न 6. घनानंद की काव्यगत विशिष्टताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-9, पृष्ठ-96, प्रश्न 6

प्रश्न 7. भारतेन्दु युगीन प्रमुख कवियों तथा उनकी रचनाओं का परिचय विस्तार से दीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-10, पृष्ठ-106, प्रश्न 6

प्रश्न 8. द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार तथा उनकी विशिष्टताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-11, पृष्ठ-113, प्रश्न 3

प्रश्न 9. प्रेमचंद युग में प्रेमचंद के अतिरिक्त सक्रिय अन्य प्रमुख कहानीकारों के रचनात्मक अवदान पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-12, पृष्ठ-120, प्रश्न 8, पृष्ठ-121, प्रश्न 10

प्रश्न 10. हिन्दी कहानी आंदोलनों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-13, पृष्ठ-126, प्रश्न 5

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

QUESTION PAPER

December – 2023

(Solved)

हिंदी साहित्य का इतिहास

B.H.D.C.-131

समय : 3 घण्टे] *[अधिकतम अंक : 100*

नोट : *किन्हीं पांच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सभी प्रश्नों के अंक* ***समान*** *हैं।*

प्रश्न 1. हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन को विस्तारपूर्वक स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-1, पृष्ठ-9, प्रश्न 9

प्रश्न 2. हिन्दी साहित्य के कालों के नामकरण के विभिन्न प्रयासों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-1, पृष्ठ-3, 'नामकरण संबंधी विभिन्न मत', पृष्ठ-5, 'आधुनिक युग के विभिन्न कालखंड और उनका नामकरण'

प्रश्न 3. भक्तिकाव्य में तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण किस प्रकार हुआ है? सोदाहरण बताइए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-3, पृष्ठ-31, प्रश्न 6

प्रश्न 4. निर्गुण संतकाव्य की सामाजिक-सांस्कृतिक भावभूमि की विशेषताओं का सोदाहरण उल्लेख कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-4, पृष्ठ-40, 'निर्गुण संतकाव्य की सामाजिक-सांस्कृतिक भावभूमि का वैशिष्ट्य'

प्रश्न 5. कृष्णभक्ति काव्य के अष्टछाप कवियों का विस्तार से परिचय दीजिए।

उत्तर–अष्टछाप से तात्पर्य उन आठ कवियों से है, जो गोसाईं विट्ठलनाथ द्वारा श्रीनाथ जी की सेवा में पद गायन हेतु नियुक्त किये गये थे। बल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अन्तर्गत श्रीनाथ जी (गोवर्धान) के मन्दिर में कीर्तन सेवा प्रारम्भ हुई। उसमें क्रियात्मक सेवा पर अधिक जोर होने के कारण नैमित्तिक कर्मों की प्रधाानता है। ये कर्म आठ हैं–मंगल, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थान, भोग, सन्धया, आरती, शयन।

इन नैमित्तिक कर्मों के सम्पदान के समय उपयुक्त गीत लिखे गये और उनके गायन की भी योजना बनी। प्रत्येक सेवा के समय शिष्यों की नियुक्ति की गई। महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार शिष्य इनकी सेवा में नियुक्त थे, जिनके नाम इस प्रकार थे–सूरदास, परमानन्द, कुम्भनदास और कृष्णदास। महाप्रभु के गोलोकवास के उपरान्त उनके सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने श्रीनाथ जी की व्यवस्था का संचालन अपने हाथ में लिया और कीर्तन सेवा आदि को बढ़ावा दिया। इस कीर्तन सेवा को अधिक ठोस रूप देने के लिए उन्होंने उपर्युक्त चार महाप्रभु के शिष्य और चार अपने शिष्य लेकर 'अष्टछाप' की स्थापना की। स्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं–नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामी।

अष्टछाप हिन्दी की अष्टधातु की मुद्रा है, जिसकी अमिट छाप हिन्दी भाषा और साहित्य पर बहुत गहरी है। अष्टछाप की यही विशेषता है कि मधयकाल के विद्वेष, घृणा और पारस्परिक वैमनस्य के जलते वातावरण में उसने धार्म, दर्शन, भक्ति, काव्य, संगीत आदि कलाओं की ऐसी विमल मधुर स्त्रोतस्विनी बहाई, जिससे सहृदय आज तक रसासिक्ति और आनन्दमग्न होते आए हैं। कर्मकाण्ड एवं ज्ञान मार्ग की कष्ट-साधाना तथा शुष्कता और निर्गुणवाद का विरोध करके इन भक्ताचार्यों ने सगुण प्रेम लक्षण मधुर भक्ति की प्रतिष्ठा की। भारत के धार्मिक इतिहास में वैष्णवी भावना का प्रचार तथा प्रसार सर्वाधिक 16वीं एवं 17वीं शताब्दियों में इन अष्ट कवियों के द्वारा हुआ।

अष्टछाप के सभी कवि संगीत कला के मर्मज्ञ थे। अतः उन्होंने भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों द्वारा संगीतमय पदों की रचना की। इनके द्वारा संगीत की ध्रुपद आदि शैलियों का बहुत विकास हुआ।

अष्टछापी कविता में संगीत के अतिरिक्त 'पाक कला' के ज्ञान की भी मार्मिक अभिव्यक्ति है। इस कविता में नाना प्रकार के व्यंजनों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। वस्तुतः ऐसे पद ठाकुरजी के राजभोग, छप्पनभोग और अन्नकूट आदि उत्सवों पर गाए जाते हैं।

विधर्मी संस्कृति और धर्म के आघातों से जाति को कृष्णभक्ति भावना की एक लड़ी में पिरोकर अष्टछाप कवियों ने 'जातीयता' की भावना को दृढ़ करने तथा जातीय सुरक्षा का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। हिन्दुओं ने अपने परम्परागत शास्त्र ग्रन्थों, वैष्णव धर्मों, अपने अवतार एवं धार्मिक विचारों के प्रति आस्था, श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करने के साथ रहीम, रसखान जैसे मुसलमान दरबारियों में भी हिन्दू भावना एवं कृष्ण-प्रेम उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी इनके द्वारा हुआ। अकबर जैसे मुगल शासक की प्रेम और सहिष्णुतापूर्ण नीति के निर्माण में भी अष्टछापी कवियों का योग मानना पड़ता है।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

Sample Preview of The Chapter

Published by:

NEERAJ PUBLICATIONS

www.neerajbooks.com

हिंदी साहित्य का इतिहास

काल-विभाजन और नामकरण

1

परिचय

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अध्ययन की सुविधा के लिए कुछ विद्वानों ने इसे कुछ विशिष्ट कालखंडों में विभाजित किया है। काल-विभाजन से साहित्य की मुख्य धाराओं के विषय-बोध में वैज्ञानिकता और सैद्धान्तिक गम्भीरता का पुट आ जाता है। सामान्यतः किसी भी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन कृति, कर्ता, पद्धति या शैली तथा विषय के आधार पर किया जाता है। जब किसी काल में प्रवृत्ति का मुख्य आधार नहीं मिलता, तो उस युग के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यकार के नाम से उस सम्पूर्ण कालखंड की साहित्यिक विशेषताओं को जानने का प्रयास किया जाता है। काल-विभाजन के लिए यदि कोई विशिष्ट आधार नहीं मिलता, तब समग्र काल को आदि, मध्य और आधुनिक काल में विभाजित कर लिया जाता है। वर्तमान समय में काल-विभाजन का यह रूप पर्याप्त प्रचलित है, परन्तु यह वैज्ञानिक कसौटी पर खरा नहीं उतरता। वस्तुतः हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन के लिए प्रवृत्तियों पर आधारित काल-विभाजन को ही अधिक उचित कहा जा सकता है; जैसे–भक्तिकाल, रीतिकाल आदि।

अध्याय का विहंगावलोकन

काल-विभाजन और नामकरण की आवश्यकता

साहित्य नदी के प्रवाह की तरह होता है, जो निरंतर आगे बढ़ता है। उसमें न कोई रुकावट आती हैं और न ही कोई उसे भंग करता है। हाँ समय के साथ साथ उसमें परिवर्तन आते रहते हैं और परिवर्तन के अनुरूप साहित्य को नयी प्रवृत्तियाँ, नयी दिशाएँ मिलती हैं।

किसी भी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन करने की सर्वाधिक उपयुक्त प्रणाली उस साहित्य में प्रवाहित साहित्य धाराओं एवं विविध प्रवृत्तियों के आधार पर उसे विभाजित करना है। युग की परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य की विषय तथा शैलीगत प्रवृत्तियाँ परिवर्तित होती रहती हैं। हिन्दी साहित्य के विषय में भी यही बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है। एक विशेष काल में समाज की विशेष परिस्थितियाँ एवं तत्सम्बन्धी विचारधाराएँ रही हैं और उन्हीं के अनुरूप साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत हुई हैं। अपवाद अवश्य रहे, परन्तु गौण प्रवृत्ति के रूप में। काल-विभाजन करते समय स्वयं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने विभाजन के आधार के सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने कहा, "जब प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिर्वतन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।"

काल-विभाजन और नामकरण का आधार

काल-विभाजन और नामकरण का उद्देश्य इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में प्रवृत्तियों के विकासक्रम को स्पष्ट करना है। साहित्य की अंतर्निहित चेतना के क्रमिक विकास, परंपराओं के उत्थान-पतन और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों को स्पष्ट करना ही काल-विभाजन और नामकरण का उद्देश्य है।

साहित्य का विकास समाज के बीच होता है। समाज में बड़ा परिवर्तन आने पर साहित्य पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। आजादी से पूर्व जिस तरह के साहित्य की रचना और आजादी के बाद की बदली हुई परिस्थिति में अंतर था। साहित्येतिहास का कालविभाजन और नामकरण सामाजिक-राजनीतिक इतिहास से प्रभावित होता है, पर उसका अनुचर नहीं होता। जब हिंदी साहित्य का आदिकाल था, भारतीय इतिहास में वह मध्यकाल था अर्थात् साहित्य के इतिहास और राजनीति के इतिहास में द्वंद्व भी है और उनका अपना-अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी है। उदाहरणस्वरूप, रीतिकालीन साहित्य तद्युगीन रजवाड़ों की राजनीतिक–सांस्कृतिक मानसिकता का परिचय देती है, पर आदिकालीन सिद्ध-नाथों की रचनाओं में राजनीति की अपेक्षा सामाजिक-सांस्कृतिक कारक ज्यादा क्रियाशील हैं। भक्तियुग के उत्थान को लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद

www.neerajbooks.com

द्विवेदी के बीच विवाद हुआ। आचार्य शुक्ल ने पश्चिमोत्तर से हुए आक्रमण को भक्ति के उत्थान का प्रमुख कारक माना, जबकि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे 'भारतीय परंपरा का स्वाभाविक विकास' कहा। साहित्य के काल-विभाजन के लिए केवल राजनीतिक इतिहास के काल-विभाजन को स्थूल रूप से आधार नहीं बनाया जा सकता। राजनीतिक अथवा सामाजिक इतिहास का सहारा साहित्य की मूल चेतना को प्रभावित करने तक ही लेना चाहिए। किसी भी ऐतिहासिक दौर में जो राजनीतिक-सांस्कृतिक-आर्थिक गतिविधियाँ चल रही होती हैं, साहित्य उनके विरोधाभासों को भी देखता है। साहित्य के काल-विभाजन और नामकरण का आधार साहित्यिक प्रवृत्ति और चेतना होनी चाहिए। प्रवृत्तियों को राजनीतिक-सामाजिक इतिहास से संबद्ध करके देखने पर प्रवृत्तियों में बदलाव के कारण की जानकारी मिलती है।

साहित्य की प्रवृत्ति के निर्माण और बदलाव के लिए विभिन्न तत्त्व जिम्मेदार होते हैं। अलग-अलग समय में अलग-अलग कारण प्रवृत्ति-विशेष के उन्मेष के पीछे सक्रिय रहे हैं। अत: काल-विभाजन और नामकरण का भी कोई रूढ़ आधार न होकर अलग-अलग समय में अलग-अलग परिस्थितियाँ निर्णायक होती हैं। कभी प्रवृत्ति विशेष प्रधान होती है, तो कभी सांस्कृतिक चेतना। रीतिकाल में काव्य-रचना की प्रवृत्ति विशेष रीति अपने समय में हावी हो गई थी, जबकि भक्तिकाल में 'भक्ति' एक सांस्कृतिक चेतना के रूप में प्रभावशाली थी। 14वीं सदी से 17वीं सदी तक 'भक्ति' की सांस्कृतिक चेतना ने समाज पर व्यापक प्रभाव डाला। भक्तिकाल की हर धारा ने पारंपरिक जड़ता और सामंती मूल्यों के प्रति प्रतिरोधी चेतना विकसित की। भक्ति के माध्यम से समाज-सुधार, प्रेम-भाईचारे का आह्वान, लोक-जीवन की प्रतिष्ठा के प्रयास हुए। इस कारण इस पूरे युग को 'भक्तिकाल' की संज्ञा से नवाजा गया। किसी समय विशेष में किसी खास व्यक्ति का हस्तक्षेप इतना महत्त्वपूर्ण और युगांतकारी होने पर उसका प्रभाव उस दौर की समस्त साहित्यकि गतिविधियों में देखने को मिलता हैं, ऐसे दृष्टांतों में युग का नामकरण व्यक्ति के नामों पर भी किया गया है। हिंदी साहित्य में 'भारतेंदु युग', द्विवेदी युग' और 'प्रेमचंद युग' आदि ऐसे ही उदाहरण हैं।

हिंदी साहित्य के काल-विभाजन की समस्या

इस बात का निर्णय करना कठिन है कि हिंदी साहित्य का इतिहास कब से आंरभ होता है। जार्ज ग्रियर्सन ने अपने इतिहास ग्रंथ में हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शताब्दी से माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है कि पुरानी हिंदी का जन्म तो सातवीं शताब्दी के आसपास हो गया था तथा उसमें सिद्धों, जैनियों और नाथपंथियों ने काव्य भी लिखा था, पर उनके काव्य में अपने-अपने धर्म-संप्रदाय की शिक्षाएँ दी गई हैं, इसीलिए उनमें काव्य के गुण कम मिलते हैं। आचार्य शुक्ल इन कवियों के काव्य को कोरी 'सांप्रदायिक शिक्षा' मानकर उसे काव्य स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार हिंदी का वास्तविक काव्य विक्रमी संवत् 1050 (993 ई.) के बाद से लिखा गया। इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास का आरंभ संवत् 1050 या 993 ई. से माना। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य का आरंभ दसवीं शताब्दी से मानते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा और डॉ. नगेंद्र इसका आरंभ सातवीं शताब्दी से मानते हैं।

हिंदी साहित्य के आरंभ संबंधी एक समस्या हिंदी भाषा और अपभ्रंश भाषा के पारस्परिक संबंध की है। भाषा विज्ञान के विद्वान प्राकृत भाषा से अपभ्रंश भाषा का और अपभ्रंश भाषा से आधुनिक भारतीय भाषाओं, जिनमें हिंदी भी एक है, का विकास मानते हैं। इस दृष्टि से अपभ्रंश भाषा हिंदी का प्रारंभिक रूप है, परंतु कुछ विद्वान अपभ्रंश को हिंदी का ही एक रूप मानते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपभ्रंश को 'प्राकृताभास हिंदी' नाम दिया, तो राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश को 'पुरानी हिंदी' की संज्ञा देते हुए अपभ्रंश के सारे कवियों को हिंदी के कवियों के रूप में स्वीकार किया। इस तरह राहुल सांकृत्यायन का मत स्वीकारने से हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शताब्दी से ही माना जाएगा और उस स्थिति में अपभ्रंश के सबसे पहले कवि सरहपाद को ही हिंदी का पहला कवि कहा जाएगा। डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित इतिहास में भी सरहपाद को हिंदी का पहला कवि माना गया है।

इस प्रकार हिंदी विद्वानों के मुख्यत: दो वर्ग हैं–

1. एक वर्ग के विद्वान हिंदी और अपभ्रंश को एक मानते हुए हिंदी का आरंभ सातवीं शताब्दी से स्वीकार करते हैं।
2. दूसरे वर्ग के विद्वान अपभ्रंश को हिंदी से अलग मानते हुए दसवीं शताब्दी के बाद से हिंदी साहित्य का आरंभ मानते हैं।

अब इस बात का निर्णय हो गया है कि अपभ्रंश और हिंदी दोनों एक भाषा नहीं हैं। अपभ्रंश हिंदी के पूर्व की भाषा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी हिंदी और अपभ्रंश को अलग माना हैं, अस्तु अब भाषा विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र के प्राय: सभी विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है कि अपभ्रंश और हिंदी अलग-अलग भाषाएँ हैं।

हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन के विभिन्न प्रयास

हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक इतिहासकारों–**गार्सा द तासी** तथा **शिवसिंह सेंगर** ने काल-विभाजन की ओर ध्यान नहीं दिया। सर्वप्रथम, **जॉर्ज ग्रियर्सन** ने अव्यवस्थित ढंग से हिन्दी-साहित्य के इतिहास को कालक्रम देने का प्रयास किया था। **ग्रियर्सन** ने *चारण काल, पन्द्रहवीं सदी का धार्मिक पुनर्जागरण, जायसी की प्रेम कविता, ब्रज का कृष्ण सम्प्रदाय, मुगल दरबार, तुलसीदास, रीति-काव्य, अठारहवीं शताब्दी, कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान आदि* शीर्षकों में साहित्य का काल-विभाजन किया। हमारे दृष्टिकोण से इसे काल-विभाजन कहना उचित नहीं है। वास्तव में ये विभिन्न अध्यायों के केवल शीर्षक मात्र हैं। इनमें कालक्रम की निरन्तरता भी नहीं है। इसके पश्चात् **मिश्र बन्धुओं** ने हिन्दी-साहित्य

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

का काल-विभाजन किया। उनके द्वारा प्रस्तुत काल-विभाजन निम्नलिखित है-

1. आरम्भिक काल	(क)	पूर्वारम्भिक काल (700 से 1343 वि.)
	(ख)	उत्तरारम्भिक काल (1344 से 1444 वि.)
2. माध्यमिक काल	(क)	पूर्व माध्यमिक काल (1445 से 1560 वि.)
	(ख)	प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561 से 1680 वि.)
3. अलंकृत काल	(क)	पूर्वालंकृत काल (1681 से 1790 वि.)
	(ख)	उत्तरालंकृत काल (1791 से 1889 वि.)
4. परिवर्तन काल		(1890 से 1925 वि.)
5. वर्तमान काल		(1926 वि. से आज तक)

डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी-साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन में हिन्दी-साहित्य का काल-विभाजन इस प्रकार किया है-

1. सन्धि-काल-सं. 750; से प्रारम्भ इसमें अपभ्रंश और जन-भाषा की सन्धि में विविध धार्मिक सम्प्रदायों का प्रवर्तन हुआ।

2. चारण-काल-प्रारम्भ सं. 1000; इसमें चारणों ने स्वदेशाभिमानी नरेशों की प्रशस्तियाँ लिखी हैं।

3. प्रेम कथा या लोक कथा-काल-इस काल में आदर्श प्रेम की लोकरंजनकारिणी कथाएं लिखी गईं।

4. भक्ति-काल-प्रारम्भ संवत् 1300; इसमें अध्यात्मवाद के देशव्यापी आन्दोलन और उसकी शाखा-प्रशाखाओं का साहित्य है।

5. कला-काल-प्रारम्भ संवत् 1700; भक्ति का श्रृंगार भाव में परिवर्तित होना।

6. प्रबुद्ध-काल-प्रारम्भ संवत् 1900; ज्ञान के विविध क्षेत्रों में विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का जागृत होना, जीवन से सम्बद्ध समस्त विषयों पर साहित्य सृजन।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य को चार कालों में विभाजित किया है-

1. आदिकाल
(वीरगाथा काल, संवत् 1050 से 1375 वि.)

2. पूर्व-मध्यकाल
(भक्तिकाल, संवत् 1375 से 1700 वि.)

3. उत्तर-मध्यकाल
(रीतिकाल, संवत् 1700 से 1900 वि.)

4. आधुनिक काल
(गद्यकाल, संवत् 1900 से अब तक)

शुक्ल जी के सामने साहित्य की जो सामग्री उपलब्ध थी, उसके आधार पर ही उन्होंने काल-विभाजन किया है। वर्तमान युग में साहित्य के क्षेत्र में हुए अनुसंधान को देखते हुए काल-विभाजन के आधार तथा स्वरूप में परिवर्तन अपेक्षित है, परन्तु जब तक विद्वानों द्वारा काल-विभाजन में नई दिशाओं का संकेत नहीं दिया जाता, तब तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रतिपादित काल-विभाजन को ही हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अध्ययन का आधार माना जा सकता है।

नामकरण संबंधी विभिन्न मत

आदिकाल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल का नाम वीरगाथा काल रखा है। राजाश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन करते थे। यही प्रबंध परंपरा रासो के नाम से पायी जाती है, जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने वीरगाथा काल कहा है। इसके संदर्भ में वे तीन कारण बताते हैं-

1. इस काल की प्रधान प्रवृत्ति वीरता की थी अर्थात् इस काल में वीरगाथात्मक ग्रंथों की प्रधानता रही है।

2. अन्य जो ग्रंथ प्राप्त होते हैं, वे जैन धर्म से संबंध रखते हैं, इसलिए नाममात्र हैं।

3. इस काल के फुटकर दोहे प्राप्त होते हैं, जो साहित्यिक हैं तथा विभिन्न विषयों से संबंधित हैं, किन्तु उसके आधार पर भी इस काल की कोई विशेष प्रवृत्ति निर्धारित नहीं होती है।

शुक्ल जी द्वारा किये गये वीरगाथाकाल नामकरण के संबंध में कई विद्वानों ने अपना विरोध व्यक्त किया है। इनमें श्री मोतीलाल मैनारिया, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि मुख्य हैं। आचार्य द्विवेदी का कहना है कि वीरगाथा काल की महत्वपूर्ण रचना पृथ्वीराज रासो की रचना उस काल में नहीं हुई थी और यह एक अर्ध-प्रामाणिक रचना है। यही नहीं शुक्ल ने जिन ग्रंथों के आधार पर इस काल का नामकरण किया है, उनमें से कई रचनाओं का वीरता से कोई संबंध नहीं है, जैसे-बीसलदेव रासो गीति रचना है। जयचंद्र प्रकाश तथा जयमयंक जस चंद्रिका-इन दोनों का वीरता से कोई संबंध नहीं है। ये ग्रंथ केवल सूचना मात्र हैं। अमीर खुसरो की पहेलियों का भी वीरत्व से कोई संबंध नहीं है। विजयपाल रासो का समय मिश्रबंधुओं ने सं.1355 माना है, अत: इसका भी वीरता से कोई संबंध नहीं है। परमाल रासो पृथ्वीराज रासो की तरह अर्ध प्रामाणिक रचना है तथा इस ग्रंथ का मूल रूप प्राप्य नहीं है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका-इन दोनों ग्रंथों की रचना विद्यापति ने अपने आश्रयदाता राजा कीर्तिसिंह की कीर्ति के गुणगान के लिए लिखे थे। उनका वीररस से कोई संबंध नहीं है। विद्यापति की पदावली का विषय राधा तथा अन्य गोपियों से कृष्ण की प्रेम-लीला है। इस प्रकार शुक्ल जी ने जिन आधार पर इस काल का नामकरण वीरगाथा काल किया है, वह योग्य नहीं है।

Neeraj Publications www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

डॉ. ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल को चारणकाल नाम दिया है, पर इस नाम के पक्ष में वे कोई ठोस तर्क नहीं दे पाये हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ 643 ई. से माना है, किन्तु उस समय की किसी चारण रचना या प्रवृत्ति का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। वस्तुतः इस प्रकार की रचनाएँ 1000 ई.स. तक मिलती ही नहीं हैं, इसलिए डॉ. ग्रियर्सन द्वारा दिया गया नाम योग्य नहीं है।

मिश्रबंधुओं ने ई.स. 643 से 1387 तक के काल को प्रारंभिक काल कहा है। यह एक सामान्य नाम है और इसमें किसी प्रवृत्ति को आधार नहीं बनाया गया है। यह नाम भी विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है।

राहुल सांकृत्यायन ने 8वीं से 13 वीं शताब्दी तक के काल को सिद्ध-सांमत युग की रचनाएँ माना है। उनके मतानुसार उस समय के काव्य में दो प्रवृत्तियों की प्रमुखता मिलती है–

1. सिद्धों की वाणी–इसके अंतर्गत बौद्ध तथा नाथ-सिद्धों की तथा जैनमुनियों की उपदेशमूलक तथा हठयोग की क्रिया का विस्तार से प्रचार करनेवाली रहस्यमूलक रचनाएँ आती हैं।

2. सामंतों की स्तुति–इसके अंतर्गत चारण कवियों के चरित काव्य (रासो ग्रंथ) आते हैं, जिनमें कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा एवं सामंतों की स्तुति के लिए युद्ध, विवाह आदि के प्रसंगों का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है। इन ग्रंथों में वीरत्व का नवीन स्वर मुखरित हुआ है। राहुल जी का यह मत भी विद्वानों द्वारा मान्य नहीं है, क्योंकि इस नामकरण से लौकिक रस का उल्लेख करनेवाली किसी विशेष रचना का प्रमाण नहीं मिलता। नाथपंथी तथा हठयोगी कवियों तथा खुसरो आदि की काव्य-प्रवृत्तियों का इस नाम में समावेश नहीं होता है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के प्रथम काल का नाम बीजवपन काल रखा। उनका यह नाम योग्य नहीं है, क्योंकि साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से यह काल आदिकाल नहीं है। यह काल तो पूर्ववर्ती परिनिष्ठित अपभ्रंश की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रारंभिक काल को आदिकाल नाम दिया है। विद्वान भी इस नाम को अधिक उपयुक्त मानते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है–वस्तुतः हिंदी का आदि काल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम, मनोभावापन्न, परंपराविनिर्मुक्त, काव्य-रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है। यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परंपरा-प्रेमी, रूढ़िग्रस्त, सजग और सचेत कवियों का काल है। आदिकाल नाम ही अधिक योग्य है, क्योंकि साहित्य की दृष्टि से यह काल अपभ्रंश काल का विकास ही है, पर भाषा की दृष्टि से यह परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई भाषा की सूचना देता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के आदिकाल के लक्षण-निरूपण के लिए निम्नलिखित पुस्तकें आधारभूत बतायी हैं-

1. पृथ्वीराज रासो, 2. परमाल रासो, 3. विद्यापति की पदावली, 4. कीर्तिलता, 5. कीर्तिपताका, 6. संदेशरासक (अब्दुल रेहमान), 7. पउमचरिउ (स्वयंभू कृत रामायण), 8. भविषयत्कहा (धनपाल), 9. परमात्म-प्रकाश (जोइन्दु), 10. बौद्ध गान और दोहा (संपादक पं. हरप्रसाद शास्त्री), 11. स्वयंभू छंद और 12. प्राकृत पैंगल।

इस प्रकार हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल के नामकरण के रूप में आदिकाल नाम ही योग्य व सार्थक है, क्योंकि इस नाम से उस व्यापक पुष्ठभूमि का बोध होता है, जिस पर परवर्ती साहित्य खड़ा है।

भक्तिकाल

चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक (1318 ई. से 1643 ई) का कालखंड हिंदी साहित्य के इतिहास में 'भक्तिकाल' को कहा जाता हैं। इस काल खंड के नामकरण का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है। कुछ विद्वान इसे पूर्व मध्यकाल भी कहते हैं। हिंदी साहित्येतिहास लेखन में ये दोनों नाम एक साथ चलते हैं, पर 'भक्तिकाल' नाम को अधिक मान्यता मिली है, क्योंकि अगर आदिकाल के समान इस काल में भी कोई प्रवृत्ति न होती, तो 'पूर्व मध्यकाल' नाम से काम चलाया जा सकता था, पर इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति 'भक्त स्पष्ट होने के कारण यह नाम प्रासंगिक है।

रीतिकाल

हिंदी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा तत्कालीन युगीन प्रवृत्तियों को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई है। विभिन्न प्रवृत्तियों की प्रमुखता के आधार पर ही उन्होने साहित्य के अलग-अलग कालखण्डों का नामकरण किया है। इसी मापदंड को अपनाते हुए हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल अर्थात 1700-1900 वि. के कालखण्ड में रीति तत्त्व की प्रधानता होने के कारण शुक्ल जी ने इस कालखण्ड को 'रीति काल' नाम दिया।

इस समय अवधि में अधिकांश कवियों द्वारा काव्यांगों के लक्षण एवं उदाहरण देने वाले ग्रंथों की रचना की गई। अनेक हिंदी कवियों द्वारा आचार्यत्व की शैली अपनाते हुए लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर अलंकार, रस, नायिका भेद आदि काव्यांगों का विस्तृत विवेचन किया गया। रीति की यह धारणा इतनी बलवती थी कि कवियों /आचार्यों के मध्य इस बात पर भी विवाद होता थी कि अमुक पंक्ति में कौन-सा अलंकार, रस, शब्दशक्ति या ध्वनि है। इन्ही सब तत्त्वों या प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए उत्तर मध्यकाल का नामकरण 'रीतिकाल' के रूप में किया गया।

आधुनिक काल

आधुनिक युग और नवजागरण की चेतना–आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास के चतुर्थ कालखंड को गद्य की

www.neerajbooks.com